दैनिक जागरण
विनम्रता से असंभव को भी संभव किया जा सकता है

बारिश में बदहाल शहर

इस वर्ष मानसून के लंबा खिंचने के चलते बाढ़ जनित समस्याएं कम होने का नाम नहीं ले रही हैं। पहले महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश बाढ़ से हलकान थे तो अब पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल के साथ कर्नाटक और केरल भी बदहाल हैं। यह पहली बार नहीं जब देश के तमाम हिस्से बाढ़ की चपेट में आए हों, लेकिन कुछ अर्से से कम समय में ज्यादा बारिश अधिक देखने को मिल रही है। यह जलवायु परिवर्तन का नतीजा है। आने वाले समय में जलवायु परिवर्तन के ऐसे दुष्प्रभाव कहीं अधिक देखने को मिल सकते हैं। अब जब यह माना जा रहा है कि जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव से बचना कठिन है तो यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि बारिश से उपजने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए हर संभव कदम उठाए जाएं। ऐसे कदमों की सबसे अधिक जरूरत शहरों में है, क्योंकि बरसाती पानी की निकासी के अभाव में वे थोड़ी सी भी अधिक बारिश में उफन पड़ते हैं। अब तो यह भी देखने को मिल रहा है कि क्षेत्र विशेष में कम बारिश के बावजूद वह बाढ़ की चपेट में आ जाता है। पटना इसका ही उदाहरण बना हुआ है। पटना के साथ-साथ भागलपुर की भी हालत खराब है और अंदेशा इस बात का है कि आने वाले दिनों में बिहार के कुछ और शहरी इलाके बाढ़ की चपेट में आ सकते हैं। ध्यान रहे कि कुछ दिनों पहले मुंबई और पुणे बारिश से बदहाल थे।

यह सही है कि जब कहीं जरूरत से ज्यादा बारिश होगी तो समस्याएं सिर उठाएंगी ही, लेकिन भारत की समस्या यह है कि हमारे शहरों का ढांचा चरमरा गया है। स्मार्ट सिटी सरीखी योजनाओं के बाद भी स्थिति में कोई बुनियादी बदलाव आता नहीं दिख रहा है तो इसीलिए कि सुनियोजित विकास की घोर अनदेखी की जा रही है। यह तब है जब देश के सभी शहर आबादी के बढ़ते दबाव का सामना कर रहे हैं। चूंकि शहरी ढांचे को दुरुस्त करने का काम आधे-अधूरे मन और अधकचरी योजनाओं से किया जा रहा है इसलिए बारिश के दिनों में शहरों में ढंग से रहना मुश्किल हो रहा है। खराब बात यह है कि शहरों की दुर्दशा से परिचित होने के बाद भी उन्हें रहने लायक बनाने के मामले में जरूरी राजनीतिक इच्छाशक्ति नहीं दिखाई जा रही है। ऐसे में आम जनता को यह समझना ही होगा कि केवल नेताओं और नौकरशाहों को कोसने से काम चलने वाला नहीं है। उसे नीति-नियंताओं को जवाबदेह बनाने के साथ यह भी समझना होगा कि शहरी ढांचे में व्यापक तब्दीली लाने की जरूरत है और इस तब्दीली की कुछ कीमत भी चुकानी होगी।

फ्लाईओवरों में दरार

बंगाल की राजधानी कोलकाता में विभिन्न फ्लाईओवरों से लेकर रेल ओवरब्रिजों की हालत गंभीर है। स्थिति ऐसी है कि हाल के दिनों में बने अधिकांश फ्लाईओवरों पर बसों की आवाजाही बंद है। कुछ फ्लाईओवरों को तो रात में पूरी तरह से बंद तक कर दिया जाता है। जाम की समस्या से निजात पाने के लिए महानगर और आसपास के जिलों में कई फ्लाईओवर तैयार किए गए हैं। परंतु देखा जा रहा है कि कुछ ही वर्षों में उन फ्लाईओवरों की दशा दयनीय हो चुकी है। ऐसा ही एक फ्लाईओवर है उल्टाडांगा में। इस फ्लाईओवर के उद्घाटन के कुछ वर्ष बाद ही एक हिस्सा धराशाई हो गया था। इसके बाद लंबे समय तक फ्लाईओवर बंद रहा। बसों एवं ट्रकों की उक्त फ्लाईओवर पर आवाजाही बंद कर दी गई। इसके बाद अभी कुछ माह पहले ही उक्त फ्लाईओवर में फिर दरार देखी गई तो उसे बंद कर उसकी जांच की गई और पिछले करीब दो माह से फ्लाईओवर का एक हिस्सा पूरी तरह से बंद है। इसी बीच अब बीटी रोड पर बना टाला ब्रिज की हालत यह हो गई है कि पिछले रविवार से इस ब्रिज पर ट्रकों एवं बसों की आवाजाही बंद कर दी गई है। इसके बाद महानगर के उत्तरी हिस्से में रहने वाले लोगों को काफी परेशानी हो रही है। इस अहम ब्रिज पर दुर्गापूजा के दौरान बसों का संचालन शुरू करने के लिए कई बैठकें हुईं। मंगलवार को नवान्न में हुई बैठक के बाद मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने कहा कि हमने राइट्स की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है, क्योंकि यातायात में सुगमता के लिए ब्रिज पर बस चलाने की अनुमति देने का जोखिम नहीं ले सकते। यही नहीं नागेरबाजार, मां, चिंगड़ीघाटा, साल्टलेक के आइटी सेक्टर फ्लाईओवर समेत कई और ओवरब्रिज हैं जिस पर बसों को चलने की अनुमति नहीं है। आखिर इन ब्रिजों एवं फ्लाईओवरों के इस हाल के लिए कौन जिम्मेवार है। पिछले वर्ष सितंबर के प्रथम सप्ताह में माझेरहाट रेल ओवरब्रिज धराशाई हो गया था। इससे पहले बड़ाबाजार में निर्माणाधीन फ्लाईओवर ढह गया जिसमें दो दर्जन से अधिक लोगों की जान चली गई थी। माझेरहाट या फिर टाला ब्रिज तो काफी पुराने ब्रिज हैं, परंतु उल्टाडांगा, नागेरबाजार और अन्य फ्लाईओवर तो हाल के दिनों में तैयार हुए हैं। फिर इसकी हालत ऐसी क्यों है? इस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। साथ ही ऐसी व्यवस्था विकसित करने की आवश्यकता है कि इन फ्लाईओवरों से लेकर रेल ओवर ब्रिजों तक को इतना मजबूत बनाया जाए कि सौ-दो सौ वर्षों तक कुछ न हो।

राजनीति की बदलती कार्य संस्कृति

प्रदीप सिंह

कुछ हालिया फैसले भाजपा में काम करने वाले आम कार्यकर्ताओं को इस बात का अहसास कराते हैं कि शिखर पर बैठे लोग ऊपर ही नहीं नीचे भी देखते हैं

अवधेश राजपूत

उत्तर प्रदेश के घोसी विधानसभा क्षेत्र के लिए हो रहे उपचुनाव में भाजपा ने विजय राजभर को उम्मीदवार बनाया है। विजय के पिता सब्जी का ठेला लगाते हैं। मंगलवार को पिता जब उम्मीदवार बेटे को माला पहनाने आए तो बेटा खुद को रोक नहीं पाया और फूट-फूट कर रो पड़ा। समाज में ऐसे दृश्य अक्सर देखने को मिल जाते हैं, पर राजनीति में ऐसी घटनाएं अपवाद के रूप में ही दिखती हैं। भारतीय राजनीति पिछले कई दशकों से ऐसे दौर में है जहां पैसा, रसूख और परिवार की ताकत का बोलबाला है। ऐसी घटनाएं भारत की राजशाही, सामंती मानसिकता से निकलकर लोकतांत्रिक होने की गवाही देती हैं। हमने लोकतांत्रिक व्यवस्था तो अपना ली, लेकिन हमारा मन राजशाही वाला ही रहा। यही कारण है कि पिछले सात दशकों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के बावजूद वंशवाद की राजनीति कमजोर होने के बजाय फलती-फूलती रही। हमने लोकतंत्र को वंशवाद और परिवारवाद के पोषकों को चुनने की व्यवस्था बना दिया, मगर 2014 के लोकसभा चुनाव के बाद से देश की राजनीति में एक निर्णायक मोड़ आया। नरेंद्र मोदी का प्रधानमंत्री बनना एक नई परिघटना थी। ऐसा नहीं है कि समाज के कमजोर तबके के लोग पहले राजनीति में सफल नहीं हुए या सत्ता में नहीं आए, लेकिन राष्ट्रीय फलक पर पिछड़े वर्ग के एक निर्धन और साधनहीन परिवार के व्यक्ति को इतना जनसमर्थन मिलना सामान्य बात नहीं थी। इसका नतीजा यह हुआ कि राजनीति के स्थापित वंशों के पराभव का दौर शुरू हो गया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण कांग्रेस का प्रथम परिवार यानी नेहरू-गांधी परिवार है। वह देश की राजनीति में प्रथम परिवार के सिंहासन से उतर कर अब महज कांग्रेस का प्रथम परिवार रह गया है। वहां भी इसके ज्यादा टिके रहने की संभावना कम होती जा रही है। उत्तर प्रदेश का मुलायम परिवार, बिहार का लालू परिवार, हरियाणा का चौटाला परिवार और कर्नाटक का देवेगौड़ा परिवार अपने घाव सहला रहा है। कुछ हैं, जो गिरने का इंतजार कर रहे हैं।

एक तरफ वंशवादी राजनीति का पराभव हो रहा है तो साथ ही कुछ नए वंशवादी भी सत्ता पर काबिज हुए हैं। तो क्या यह तथ्य पहले की परिघटना को गलत साबित करते हैं? नहीं। संस्कृति के पाठ्यक्रम में 'थ्योरी ऑफ कल्चरल लैग' पढ़ाई जाती है। इसके मुताबिक सभ्यता के विकास के साथ होने वाले बदलावों के बावजूद संस्कृति का एक हिस्सा पीछे रह जाता है। उप्र और बिहार में बारात की विदाई से पहले लड़के का मूसल से परछन करने की रस्म होती है। मूसल, सूप, चाकी जैसी घरेलू उपयोग की तमाम चीजें जो एक समय हर घर में अनिवार्य रूप से पाई जाती थीं, अब खोजे नहीं मिलेंगी, क्योंकि उनकी उपयोगिता खत्म हो गई। इन्हें अब केवल शादी-ब्याह के अवसर के लिए ही बनाया जाता है। वंशवादी राजनीतिक दलों का भी यही भविष्य है।

लोग अक्सर वंशवाद और परिवारवाद को एक ही मान लेते हैं। वंशवाद वह है जहां आपके जन्म से आपका पद आरक्षित हो जाता है। कई बार यह मैरेज सर्टिफिकेट से भी होता है। वंशवादी पार्टियां अपने कार्यकर्ताओं को संदेश देती हैं कि पार्टी और सत्ता का शीर्ष पद परिवार के सदस्य के लिए आरक्षित है। भाजपा और वामपंथी दल जैसे चुनिंदा राजनीतिक दल हैं जो वंशवाद से अछूते हैं, मगर परिवारवाद के मामले में वामपंथी दल एकमात्र अपवाद हैं। यह दीगर बात है कि वामपंथी दल लुप्तप्राय राजनीतिक प्रजाति बन गए हैं। संसद से सड़क तक उनकी उपस्थिति उत्तरोत्तर घटती जा रही है और प्रभाव तो अपने घर में भी नहीं रह गया है। किसी भी सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन में समय लगता है।

इस सिलसिले में एक बार फिर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का जिक्र आवश्यक है। भाजपा के आलोचक कहते हैं कि दो लोग पार्टी चलाते हैं-मोदी और अमित शाह। इस पर बहस हो सकती है कि पार्टी यही दो लोग चलाते हैं या नहीं, लेकिन एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि भाजपा की राजनीतिक कार्य संस्कृति में बदलाव लाने की सोच और क्षमता इन्हीं दो नेताओं में है। लोकसभा चुनाव हो या विधानसभा चुनाव, टिकटों का वितरण हो या मंत्रिमंडल का गठन, सबमें इस बात का खयाल रखा जा रहा है कि परिवारवाद की बढ़ती प्रवृत्ति पर लगाम लगाई जाए। कुछ अपवादों को छोड़कर इस नियम का बड़ी कड़ाई से पालन किया जा रहा है। इसके कारण पार्टी के अंदर विरोध भी झेलना पड़ रहा है और चुनाव में नुकसान का जोखिम भी है। लोकसभा चुनाव में अपने बेटे को टिकट दिलाने के लिए चौधरी वीरेंद्र सिंह को मंत्री पद से हाथ धोना पड़ा। प्रेम कुमार धूमल की दावेदारी खत्म होने के बाद ही बेटे अनुराग ठाकुर को मंत्री पद मिला। राजनाथ सिंह का बेटा दूसरी बार विधायक बनने के बावजूद मंत्री नहीं बन पाया। ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं, मगर कल्याण सिंह के परिवार के रूप में अपवाद भी हैं।

राज्यपालों की नियुक्ति में भी पार्टी में नई कार्य संस्कृति की झलक मिलती है। कांग्रेस दशकों तक पूर्व नौकरशाहों और परिवार के वफादारों को इस पद से नवाजती रही है, लेकिन पिछले साढ़े पांच वर्षों में मोदी सरकार ने दो-तीन अपवादों को छोड़कर उन्हीं लोगों को राजभवन भेजा जिन्होंने जनसंघ से भाजपा के दौर में पार्टी के लिए संघर्ष किया। यह नई राजनीतिक संस्कृति संगठन के लिए जीवन खपाने वाले कार्यकर्ताओं का सम्मान है। कोई भी संगठन उतना ही मजबूत या कमजोर होता है जितना उसके कार्यकर्ता।

चूंकि बात घोसी उपचुनाव से शुरू हुई है इसलिए उन फागू चौहान का जिक्र जरूरी है जिनके इस्तीफे से यह सीट खाली हुई है। फागू चौहान जाति से नोनिया हैं। उनकी जाति के लोगों की संख्या बहुत कम है। इसलिए दशकों तक राजनीतिक दल इस वर्ग की उपेक्षा करते रहे। मोदी-शाह ने उन्हें बिहार का राज्यपाल बना दिया। फागू चौहान के सजातीय लोगों के लिए बिहार का राजभवन इस समय तीर्थ बन गया है। सैकड़ों लोग हर महीने उनसे मिलने और राजभवन में किसी अपने को देखने जाते हैं। वही राजभवन, जो आजादी के बाद से कुछ खास लोगों के लिए आरक्षित रहता था। विजय राजभर और फागू चौहान महज दो व्यक्ति नहीं हैं। वे ऐसी ऐतिहासिक घटना के चरित्र हैं जो राजनीति और समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े दूसरे व्यक्तियों को यह भरोसा दिलाते हैं कि उनके लिए भी जगह है। केवल जगह ही नहीं, बल्कि शिखर पर पहुंचने का अवसर भी। यह घटना पार्टी संगठन में काम करने वाले आम कार्यकर्ता को इसका अहसास कराती है कि शिखर पर बैठे लोग ऊपर ही नहीं नीचे भी देखते हैं। बशर्ते उनमें संवेदनशीलता, दलगत हित पर समाज के हित को तरजीह देने और प्रतिरोधी शक्तियों से लड़ने की इच्छाशक्ति हो। उनकी यह इच्छाशक्ति ही कार्यकर्ता का आत्मविश्वास बढ़ाती है कि राजनीति में अपनी जगह बनाने के लिए धनवान या रसूख वाला होना जरूरी नहीं है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

दुनिया को दिशा दिखाने वाले गांधी

केसी त्यागी

यह गांधी की स्वीकार्यता ही है कि भारत के अलावा दुनिया के कई देश उनका स्मरण कर रहे हैं

महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में हाल में संयुक्त राष्ट्र में एक विशेष श्रद्धांजलि सभा में उनका स्मरण किया गया। इस दौरान संयुक्त राष्ट्र महासचिव समेत तमाम राष्ट्राध्यक्षों ने गांधी की प्रासंगिकता को रेखांकित किया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने संबोधन में कहा, 'महात्मा गांधी भारतीय थे, लेकिन वह केवल भारत के नहीं थे और यह मंच इसका जीवंत उदाहरण है।' वास्तव में महात्मा गांधी की स्वीकार्यता विश्व के कोने-कोने में है। इसी कारण भारत समेत दुनिया के कई मुल्क उनकी 150वीं जयंती पर उनके आदर्शों को प्रचारित-प्रसारित कर रहे हैं। गांधी के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं वैश्विक स्वीकार्यता की ऐसी ही एक कड़ी में संयुक्त राष्ट्र ने 15 जून 2007 को उनकी जन्मतिथि को 'अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस' घोषित किया था।

अमेरिका के प्रसिद्ध अश्वेत नेता डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने जब भारत दौरा किया तो उन्होंने इसे 'तीर्थयात्रा' कहा था। इसका एकमात्र कारण गांधी जी थे। गांधी जी के सिद्धांतों के कारण भारत की धरती को 'तीर्थ स्थल' करार देकर उन्होंने भारत का मान बढ़ाया। किंग लूथर ने जैसे-जैसे गांधी जी के बारे में जाना, उनके मन में गांधी के प्रति सम्मान और बढ़ता चला गया। गांधी को जानने से पहले रंगभेद और नस्लभेद आंदोलन के प्रणेता मार्टिन लूथर का मानना था कि 'प्रेम की नीति सिर्फ व्यक्तिगत संबंधों में ही प्रभावी हो सकती है, अन्य सामाजिक, प्रजातीय संघर्षों एवं राष्ट्रों के बीच में नहीं।' गांधी के विचारों का अनुसरण कर वह इस नतीजे पर पहुंचे कि 'प्रेम और अहिंसा' किसी सामाजिक-सामूहिक परिवर्तन के लिए भी शक्तिशाली उपकरण साबित हो सकते हैं। उन्होंने कहा था, 'जो बौद्धिक-नैतिक संतुष्टि मैं बेथम और मिल के उपयोगितावाद, मार्क्स और लेनिन की क्रांतिकारी पद्धतियों, हॉब्स के सामाजिक सिद्धांत और नीत्शे के दर्शन में भी नहीं पा सका, वह मुझे गांधी के अहिंसक प्रतिरोध के दर्शन में मिला।'

अफ्रीका के गांधी कहलाए नेल्सन मंडेला ने भी गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर रंगभेद के खिलाफ अपने अभियान को मूर्त रूप दिया। गांधी से प्रेरणा लेकर ही उन्होंने अन्याय के खिलाफ आक्रोश को रचनात्मक और अहिंसक रूप प्रदान कर नस्लभेद और रंगभेद की लड़ाई को एक मुकाम तक पहुंचाने का काम किया। उनकी एक विशेषता यह भी रही कि वह गांधी की ही तरह स्थानीय लोगों में अहिंसा की धारा का प्रवाह तेज करने में कामयाब रहे। कोई किसी से कितना प्रभावित हो सकता है, मंडेला इसकी मिसाल हैं। रंगभेद के खिलाफ लड़ाई में मंडेला को 27 वर्षों तक जेल में यातनाएं झेलनी पड़ीं, लेकिन जैसे गांधी ने विश्व युद्ध के बाद के हालात में असहयोग, अहिंसा और सत्य का मार्ग बुलंद किया, ठीक उसी तरह तमाम विषम और हिंसक परिस्थितियों के बावजूद मंडेला गांधीवादी तौर-तरीकों पर टिके रहे। स्मरण रहे कि वह समय तबाही और हिंसक माहौल का था। हिरोशिमा और नागासाकी की तबाही के बाद अहिंसा की हिमायत तब बेमानी लगती थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान गांधीजी ने हिटलर के खिलाफ अहिंसात्मक रुख अपनाने की अपील की। कई वैश्विक दार्शनिकों का मानना है कि गांधी की अहिंसा और असहयोग वाली नीति किसी राष्ट्र की सीमा तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह वैश्विक बन गई। स्वयं मंडेला ने कहा था, 'दक्षिण अफ्रीका के शांतिपूर्ण बदलाव में गांधी जी की विचारधारा का बहुत बड़ा योगदान है। उनके सिद्धांतों के बल पर ही दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद जैसा सामाजिक पाप समाप्त हो पाया।'

बीसवीं शताब्दी में भारत समेत विश्व के कई मुल्कों के लिए गांधी के सत्याग्रही औजार कर्तव्य का रूप ले चुके थे। जाफना यूथ कांग्रेस के संस्थापक और श्रीलंका एवं भारत के लिए पूर्ण स्वराज की वकालत करने वाले पेरिनबनयागाम के निमंत्रण पर अक्टूबर 1927 में गांधी जी ने श्रीलंका की यात्रा की। लगभग 20 दिनों के प्रवास के दौरान गांधीवादी मूल्यों का प्रवाह तेज हो चुका था। बांग्लादेश यानी पूर्वी पाकिस्तान में शांतिप्रिय बंगालियों के आंदोलन पर भी गांधी जी के आदर्शों की अमिट छाप देखने को मिली थी। पाकिस्तानी शासकों के अत्याचार के खिलाफ शेख मुजीबुर्रहमान का अहिंसात्मक संघर्ष भी गांधीवादी प्रवृत्ति का था। दुनिया के अन्य देशों में भी लोगों ने गांधीवादी तरीकों से अपनी लड़ाई लड़ी।

गांधी ने लंदन में वकालत की पढ़ाई की और दक्षिण अफ्रीका में प्रैक्टिस की। इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका में उनका व्यापक प्रभाव भी पड़ा। उन्होंने अमेरिका की यात्रा कभी नहीं की, लेकिन हिंदुस्तान के बाद अमेरिका शायद ऐसा देश है जहां गांधी जी की सर्वाधिक प्रतिमाएं हैं। अमेरिकी नागरिकों पर गांधी जी के विचारों का गहरा असर है। भारत में उनके द्वारा किए जा रहे समाज सुधार और स्वाधीनता आंदोलन पर अमेरिकियों की पैनी नजर रहती थी। स्वराज प्राप्ति की दिशा में गांधी जी का असहयोग आंदोलन दैनिक रूप से अमेरिकी अखबारों की सुर्खियों में हुआ करता था। जातीय भेदभाव की समाप्ति और करीब छह दशक बाद एक अश्वेत का अमेरिकी राष्ट्रपति चुना जाना जातीय बराबरी के संघर्ष का नतीजा है जिसमें कहीं न कहीं महात्मा गांधी का अप्रत्यक्ष योगदान देखा गया। बराक ओबामा खुद को गांधी का अनुगामी मानते हैं। गांधी को अंग्रेजों से कोई परेशानी नहीं थी, लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवाद और उसके शोषक रवैये के प्रति उनके असहयोग की नीति दुनिया के लिए मजबूत हथियार बनी।

गांधी भारत की मिट्टी के ऐसे सपूत थे जिन्होंने विश्वपटल पर भारत की 'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय' वाली छवि प्रस्तुत की। शायद गांधी इकलौते भारतीय हैं जो समूची विश्व बिरादरी के लिए प्रेरणास्रोत हैं। अपने जीवन काल में उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, भाषाई, मानवतावादी आदि सभी पक्षों को अपने जागरण और सत्याग्रह अभियान से जोड़े रखा। ये सभी विषय आज भी पूरी दुनिया के लिए प्रासंगिक है। इसलिए वह जहां भारत में स्वतंत्रता संग्राम के महानायक, महात्मा के नाम से जाने जाते हैं वहीं पूरी दुनिया में एक बड़े समाज सुधारक, और राजनीतिक मार्गदर्शक के रूप में।

(लेखक जदयू के राष्ट्रीय प्रवक्ता हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

इंद्रिय निग्रह

इंद्रिय निग्रह के दो भेद हैं-अंतःकरण और बहिःकरण। मन, बुद्धि और अहंकार तथा चित्त-इनकी संज्ञा अंतःकरण है और दस इंद्रियों की संज्ञा बहिःकरण है। अंतःकरण की चारों इंद्रियों की कल्पना भर हम कर सकते हैं, उन्हें देख नहीं सकते, लेकिन बहिःकरण की इंद्रियों को हम देख सकते हैं। अंतःकरण की इंद्रियों में मन सोचता-विचारता है और बुद्धि उसका निर्णय करती है। कहते हैं 'जैसा मन में आता है, करता है।' यह संशयात्मक ही रहता है, पर बुद्धि उस संशय को दूर कर देती है। चित्त अनुभव करता एवं समझता है। अहंकार को लोग साधारण रूप से अभिमान समझते हैं, पर शास्त्र उसको स्वार्थपरक इंद्रिय कहता है।

बहिःकरण की इंद्रियों के दो भाग हैं-ज्ञानेंद्रिय एवं कर्मेंद्रिय। नेत्र, कान, जीभ, नाक और त्वचा ज्ञानेंद्रिय हैं, क्योंकि आंख से रंग और रूप, कानों से शब्द, नाक से सुगंध-दुर्गंध, जीभ से स्वाद-रस और त्वचा से गरम एवं ठंडे का ज्ञान होता है। वाणी, हाथ, पैर, जननेंद्रिय और गुदा-ये पांच कर्मेंद्रिय हैं। जो इन इंद्रियों को अपने वश में रखता है, वही जितेंद्रिय कहलाता है। जितेंद्रिय होना साधना एवं अभ्यास से प्रायोजित होता है। हमें इंद्रिय निग्रह होना चाहिए। जो मनुष्य इंद्रिय निग्रह कर लेता है वह कभी पराजित नहीं हो सकता, क्योंकि वह मानव जीवन को दुर्बल करने वाली इंद्रियों के फेर में नहीं पड़ सकता। मनुष्य के लिए इंद्रिय निग्रह ही मुख्य धर्म है। इंद्रियां बड़ी प्रबल होती हैं और वह मनुष्य को अंधा कर देती हैं।

मानव हृदय बड़ा दुर्बल होता है। सच्चरित्रता और नैतिकता को ही मानव धर्म कहा गया है। जो लोग मानते हैं कि परमात्मा सभी में व्याप्त है, सभी एक हैं, उन्हें अनुभव करना चाहिए कि हम यदि अन्य लोगों का कोई उपकार करते हैं तो प्रकारांतर से वह अपना ही उपकार है, क्योंकि जो वे हैं, वही हम हैं। इस प्रकार जब सब परमात्मा के अंश एवं रूप हैं तो हम यदि सबका हितचिंतन एवं सबकी सहायता करते हैं तो यह परमात्मा का ही पूजन और उसी की आराधना है।

डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षधर थे गांधी

के श्रीनिवास राव

हिंदी गांधी के लिए मात्र एक भाषा नहीं थी, बल्कि पूरे देश की धड़कन थी, सबको एक सूत्र में बांधने का माध्यम थी

महात्मा गांधी का हिंदी के प्रति प्रेम बड़ा गहरा था। उन्होंने 29 मार्च, 1918 को इंदौर में आठवें हिंदी साहित्य में पहली बार आह्वान किया था कि हिंदी को ही भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए। बापू ने अपने उद्बोधन में हिंदी की गंगा-जमुनी संस्कृति पर भी प्रकाश डाला था। उन्होंने कहा था-हिंदी वह भाषा है, जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी संस्कृतमयी नहीं है, न ही वह एकदम फारसी अल्फाज से लदी हुई है। एक बार उन्होंने कहा था कि हमारी कानूनी सभाओं में भी राष्ट्रीय भाषा द्वारा कार्य चलने चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक प्रजा को राजनीतिक कार्यों में भी ठीक तालीम नहीं मिल सकेगी। उनका मानना था कि हमारी अदालतों में राष्ट्रीय भाषा और प्रांतीय भाषाओं का अवश्य प्रचार होना चाहिए।

गांधी जी के हिंदी के बारे में स्पष्ट दृष्टिकोण से हम यह बात सहज ही समझ सकते हैं कि हिंदी उनके लिए मात्र एक भाषा नहीं थी, बल्कि वह एक व्यापक अर्थों में पूरे देश की धड़कन थी, सबको एक सूत्र में बांधने का माध्यम थी और इसी के साथ वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक कारगर अस्त्र बन सकी थी। गांधी जी मानते थे कि एक संप्रभु राष्ट्र में स्वराज, स्वतंत्र, स्वचिंतन एवं स्वधर्म का विचार होना आवश्यक है। यही 'स्वदेशी चिंतन' है। अपनी भाषा हिंदी में यह तत्व और गुण है कि वह हमें स्वदेशी चिंतन करने का आधार प्रदान कर सकती है।

महात्मा गांधी ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए मात्र वक्तव्य ही नहीं दिए थे, बल्कि अपने जीवन में इसे करके भी दिखाया था। एक घटना का यहां मैं और उल्लेख करना चाहता हूं। भारत को जब स्वतंत्रता मिल गई तो देश और विदेश के पत्रकार सभी नेताओं के साक्षात्कार ले रहे थे। तब एक विदेशी पत्रकार ने गांधी जी से हिंदी के बजाय अंग्रेजी में उत्तर देने के लिए कहा। गांधी जी ने मना कर दिया। तब उस पत्रकार ने कहा कि यह साक्षात्कार सिर्फ भारत के लोगों के लिए नहीं है, बल्कि विदेश के लोगों के लिए है। गांधी जी कुछ देर चुप रहे। उसके बाद उन्होंने लगभग गुस्से में कहा कि दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता। यह प्रसंग हिंदी के प्रति गांधी जी के सम्मान और आदर का अद्भुत उदाहरण है।

अब यह हमें सोचना है कि जिस हिंदी को गांधी जी इतने वृहद स्वरूप में देख रहे थे, उसके प्रयोग की अनिवार्यता पर बल दे रहे थे, जो हिंदी, उनके लिए 'स्वराज' को हासिल करने का महत्वपूर्ण माध्यम थी, उस हिंदी के साथ हमने स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद क्या बर्ताव किया है? क्या हमने अपना कर्तव्य निभाया है? क्या हम हिंदी को वह गौरव दे सके हैं जो आवश्यक था? क्या हम हिंदी प्रयोग करने में गर्व महसूस करते हैं या किसी संकोच का अब तक शिकार हैं? अगर ऐसा कोई संकोच है और हम हिंदी की जगह अंग्रेजी का प्रयोग करने में कुछ उच्चता का अनुभव करते हैं तो हमें अपने आत्म-सम्मान के बारे में पुनः सोचना होगा।

(लेखक साहित्य अकादमी के सचिव हैं)

मेलबाक्स

गांधी की अतिउदारवादी सोच का प्रतिफलन

हम सबके प्रकाशपुंज हैं गांधी शीर्षक से लिखे अपने लेख में सुधींद्र कुलकर्णी ने महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत पर आधारित अतिमानवीय विचार को जिस रूप में प्रतिपादित किया है, वह उन्हीं के जीवन में तब धराशायी हो गया जब जिन्ना की जिद के आगे गांधी जी की विनयानवत मानवता पराभूत हो गई थी। कश्मीर के अनुच्छेद-370 और 35-ए के मूल में एक वर्ग विशेष के प्रति बरती जाने वाली यही अतिउदारवादी सोच थी, जिसे बड़े सलीके से धर्मनिरपेक्षता का जामा पहनाकर सिद्धांत रूप में सांप्रदायिक सौहार्द का पर्याय बना दिया गया। निश्चित रूप से इस देश में सांप्रदायिक सौहार्द कायम रहना चाहिए, जिसके अनुरूप सभी भारतीयजन सामाजिक जीवन में अपनी रीति-नीति का निर्वाह करते हुए राष्ट्र-जीवन में समभाव रूप से रहें। धर्मनिरपेक्षता के इन राष्ट्रीय मूल्यों के अनुरूप यदि साफ-सुथरी नियति से सांप्रदायिक सौहार्द को कायम रखा जाता तो न तो मुस्लिम बहुल कश्मीर को संविधान के अस्थाई अनुच्छेद-370 और 35-ए के रूप में विशेष दर्जा देने की बात होती और न ही नब्बे के दशक में आतंकवाद फैलाकर कश्मीर घाटी को हिंदू विहीन किया जाता। कश्मीर की इन दोनों विसंगतियों के मूल में तुष्टीकरण की वही अतिउदारवादी सोच ही रही है जो 1947 में देश विभाजन का कारण बनी थी। इस देश की आजादी के लिए सत्य और अहिंसा के सिद्धांत पर अडिग रहकर, ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेने वाले महात्मा गांधी की देशभक्ति असंदिग्ध है, लेकिन उनकी मुस्लिम लीग के प्रति बरती गई अतिउदारता देशघाती साबित हुई। यदि समय रहते गांधी जी मुस्लिम लीग के समक्ष भी सत्याग्रही बन जाते तो आज भारत को चार युद्धों के साथ पिछले तीन दशकों से अनवरत आतंकवाद का नासूर देने वाला पाकिस्तान नहीं होता। देश के स्वाभिमान के साथ राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए कभी-कभी 'जैसे को तैसा' की नीति का अनुसरण करना भी जरूरी होता है।

pandeyvp1960@gmail.com

ई-सिगरेट पर प्रतिबंध

देश में प्राचीन काल में मादक पदार्थों का प्रयोग करना तामसिक व राक्षसी प्रवृत्ति कहलाता था व तत्कालीन समाज की दृष्टि में यह हेय कर्म था। धीरे-धीरे इसकी स्वीकार्यता बढ़ने लगी। कोई भी वस्तु धीरे-धीरे प्रयोग में लाए जाने पर कालांतर में सर्व स्वीकार्य हो जाती है। शराब, सिगरेट, तंबाकू के साथ ऐसा ही हुआ। यह वह देश है जहां कभी प्याज और लहसुन को भी दुर्गंध की वजह से तामसिक की श्रेणी में रखा जाता था, यद्यपि इनमें औषधीय गुण विद्यमान हैं। यह हमारे चारित्रिक क्षरण का ही तो प्रतीक है। पहले शौक में इसका प्रयोग कालांतर में लत में बदल जाता है तथा व्यक्ति अपना तन, मन, धन, प्रतिष्ठा, चरित्र आदि सब कुछ लुटा बैठता है। उसका मानस सिर्फ इन द्रव्यों की तलाश करता रहता है, जो उसकी आवश्यकता बन चुकी होती है। ई-सिगरेट पर यद्यपि प्रतिबंध लगाकर सरकार ने सुकर्म किया है। तथापि इनका प्रयोग करने वालों को हतोत्साहित व उनकी पहचान कर इसकी लत से बाहर निकालने के लिए चिकित्सकीय, सामुदायिक व व्यवहारिक प्रयासों की आज अधिक जरूरत है। अन्यथा यह भी किसी दिन स्वीकार्य हो जाएगा।

डॉ. मनोज कुमार शर्मा, स्याना, बुलंदशहर

खिलाड़ी को मिले मार्गदर्शन

जब कोई युवा खिलाड़ी टीम का हिस्सा बनता है तो उसे अपने वरिष्ठ खिलाड़ियों के प्रोत्साहन की आवश्यकता पड़ती है। कोच और कप्तान का यह दायित्व बनता है कि वे नए युवा सदस्य का मार्गदर्शन करें, लेकिन भारतीय क्रिकेट टीम का रवैया विचित्र है। युवा क्रिकेटर रिषभ पंत को जहां मार्गदर्शन की जरूरत थी वहीं आलोचनाओं का दौर शुरू हो गया और परिणामतः उन्हें दक्षिणी अफ्रीका के विरुद्ध खेले जा रहे पहले टेस्ट की टीम में नहीं चुना गया। बेशक महेंद्र सिंह धौनी महान खिलाड़ी हैं, लेकिन वे एक दिन में महान नहीं बन गए थे। यदि रिकॉर्ड देखा जाए तो ज्ञात होगा कि आरंभ में लगभग सभी खिलाड़ियों ने संघर्ष किया है। रिषभ पंत का प्रदर्शन इतना बुरा भी नहीं रहा कि उन्हें टीम से बाहर का रास्ता दिखा दिया जाए। सबसे बड़ी बात तो यह है कि रिषभ पंत युवा हैं और आगे चलकर देश के लिए क्रिकेट में नए कीर्तिमान रच सकते हैं। उन्हें अपने वरिष्ठ साथियों के प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

रणजीत वर्मा, फरीदाबाद

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।